छाया

[नाटक]

पात्र—

चन्द्रगुप्त—भारत-सम्राट् ।

छाया—एक पहाड़ी राज-कन्या

वाचाल—चन्द्रगुप्त का मित्र ।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त का गुरु ।

शिवा—चन्द्रगुप्त की माता ।

कुमारी—छाया की सहेली ।

पहला दृश्य

स्थान—मगध का राजमहल

समय—दोपहर

(छाया और उसकी सहेली कुमारी)

कुमारी—

तो वह दिन आ गया, जिसके लिए आप और महाराज, दोनों तड़प रहे थे । सड़कें सज रही हैं, बाज़ार साफ़ हो रहे हैं, और राज-दरबारी—

छाया—

कितनी प्रतीक्षा के बाद यह दिन देखने को मिला है ! आज महाराज के हर्ष की कोई सीमा नहीं। जब आज प्रातःकाल मुझसे मिलने के लिए आये, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानों सारे संसार का आनंद उन्हीं को मिल गया है। सखि ! तुमसे क्या पर्दा है। उनको मुझसे प्यार है; और जब वह अपने मुख से उसे प्रकट करते हैं तो मैं लज्जा से पृथ्वी में गड़ जाती हूँ।

कुमारी—

क्यों ?

छाया—

पहले उनकी पदवी का ध्यान करो, और फिर मेरी ओर देखो। वह आज भारतवर्ष के सम्राट् हैं। उनके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द क़ानून है। और, मैं एक छोटे-से पहाड़ी राजा की लड़की हूँ। मैं उनके सामने क्या चीज़ हूँ !

कुमारी—

राजकुमारी ! यह तुम्हारी भूल है—

छाया—

परन्तु फिर भी, वह मुझे प्यार करते हैं, मुझे चाहते हैं, मेरे बिना रह नहीं सकते।

कुमारी—

प्यार के खेल निराले हैं !

छाया—

कहते थे, तुम मुझे संसार की प्रियतम वस्तुओं से भी प्रियतम हो। यदि मुझे भारतवर्ष का शासन छोड़ना पड़े, तो तुम्हारे लिए उसे भी छोड़ दूँगा।

कुमारी—

क्यों न हो, तुमने दो बार उनका जीवन बचाया है।

छाया—

तो क्या वह मुझसे इसलिए प्रेम करते हैं ? सखि ! तुम महाराज को नहीं जानतीं। तुम उनकी प्रकृति से नितांत अपरिचित हो। तुमने उनके

प्यार का, उनके भाव का, उनके शील का अपमान किया है। क्या मैंने उनके प्राण बचाकर उन पर उपकार किया है ?

कुमारी—

क्यों नहीं ? मेरा तो यही विचार है।

छाया—

परन्तु यह ठीक नहीं। यदि सेवक अपने स्वामी के प्राण बचाता है, तो क्या उस पर उपकार करता है ? यदि एक सैनिक अपने सेनापति पर आक्रमण होते देखकर तलवार निकालकर आगे बढ़ता है, तो क्या वह उस पर उपकार करता है ? नहीं, यह उसका कर्त्तव्य है, यह उसका मनुष्यत्व है। और यहाँ, मेरी अवस्था में—ओह ! तुमने कुछ नहीं समझा। कुमारी ! वह भारतवर्ष के लिए लड़ रहे थे, विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण को रोकने के लिए अपने प्राणों को हथेली पर लिये हुए थे। ऐसी अवस्था में यदि मैंने उनकी रक्षा के लिए कुछ किया, तो वह उन पर कोई उपकार नहीं, यह मेरा धर्म था। क्या मैंने भारत की मिट्टी से जन्म नहीं लिया ? क्या मैंने इसका अन्न नहीं खाया, इसका जल नहीं पीया, इसकी हवा में श्वास नहीं लिया ?

कुमारी—

सचमुच तुमने जो कुछ किया, वह तुम्हारा धर्म था। परन्तु क्या महाराज इसे भूल सकते हैं ? मैं यह नहीं मान सकती।

छाया—

वह नहीं भूल सकते, उन्हें नहीं भूलना चाहिए, वह नहीं भूलेंगे। परन्तु मुझ पर उनके प्रेम का यही कारण है, यह मैं कभी नहीं मान सकती। क्या तुम्हारा यह विचार है कि कल को यदि कोई और स्त्री महाराज पर आई हुई विपत्ति टालने के लिए अपना जीवन जोखिम में डाल दे, तो महाराज उससे भी प्रेम करने लगेंगे ? कुमारी ! वीरों के हृदय इतने सस्ते नहीं होते !

कुमारी—

तो तुम्हारे विचार में वह तुमसे क्यों प्रेम करते हैं ?

छाया—

इसलिए कि वह जानते ही नहीं, बल्कि उनको विश्वास है कि छाया मेरी

पूजा करती है, मेरे सिवा किसी अन्य पुरुष की ओर नहीं देखती। उनका प्रेम-भरा हृदय मेरे इस भाव पर मुग्ध है; नहीं तो मुझ-जैसी लड़कियाँ –ओह! मुझ पर वह कितनी दया करते हैं। कुमारी! वह मनुष्य नहीं, देवता हैं। मैं उनकी पूजा करती हूँ।

(चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त—

किसकी पूजा करती हो? बस, शरमा गईं! लो; मैं जाता हूँ, समझ गया। तुम्हें मेरा आना नागवार गुज़रा है।

छाया—

नहीं महाराज! नहीं। मैं—

(कुमारी का प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त—

सब समझता हूँ प्रिये! मैं सब समझता हूँ। उठो, ज़रा इधर आओ, और बाहर की ओर देखो।

(छाया चन्द्रगुप्त के निकट आकर दरीचे से बाहर की ओर झाँकती है।)

छाया—

ऐसा प्रतीत होता है कि आज प्रत्येक नगर-निवासी अपने शरीर की संपूर्ण शक्तियों से काम कर रहा है।

चन्द्रगुप्त—

क्यों न करें। आज उनके सम्राट् का विवाह है।

छाया—

(एकाएक उदास होकर) परन्तु महाराज!—

चन्द्रगुप्त—

क्यों छाया! यह तुम्हें क्या हो गया? तुम्हारे मुख का रंग सहसा क्यों बदल गया? तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों आ गये? तुम्हारा मीठा स्वर एकाएक दुःख और शोक के सागर में क्यों डूब गया? आज के दिन, जब कि संसार में तुम्हें सबसे अधिक प्रसन्न होना चाहिए, तुम रो रही हो। कहो, इसका क्या कारण है?

छाया—

महाराज ! मैं—(फिर रुक जाती है।)

चन्द्रगुप्त—

कहो प्यारी छाया ! कहो। मुझे तुम्हारा उदास मुख, शोकातुर नेत्र और कंपित स्वर व्याकुल किये देते हैं।

छाया—

महाराज ! इसी प्रेम का विचार मुझे अधीर कर रहा है। (एकाएक आँखें उठाती और फिर सिर झुका लेती है।)

चन्द्रगुप्त—

(व्याकुलता से खड़े होकर) अर्थात् ?

छाया—

महाराज ! मैं ग़रीब हूँ, मैं आपके योग्य नहीं। परन्तु आप फिर भी मुझे इतना चाहते हैं, इतना प्यार करते हैं। मैं संसार में सबसे बढ़कर सौभाग्यवती हूँ; क्योंकि मैंने आपका प्रेम जीत लिया है। मगर सोचती हूँ, क्या यह प्रेम इसी प्रकार बना रहेगा ? महाराज ! यदि आपकी आँखें ज़रा भी बदली हुई दिखाई दीं, तो—(आँखों में आँसू भर आते हैं।)

चन्द्रगुप्त—

(तेज़ी से) छाया ! इस व्यर्थ विचार को हृदय से दूर कर दो। क्या तुम मेरे प्रेम की परीक्षा करना चाहती हो—मैं इसके लिए हर घड़ी तैयार हूँ।

छाया—

(घबराकर) नहीं महाराज ! नहीं। मेरा तात्पर्य यह कभी न था।

चन्द्रगुप्त—

(नम्रता से) तो फिर आज के दिन की खुशी को, जो मेरे और तुम्हारे जीवन का एक विशेष दिन है, एक कल्पित भ्रम के कारण क्यों नष्ट किये देती हो ? छाया ! चन्द्रगुप्त बाहर सम्राट् है, शक्ति-संपन्न है, गौरवशाली है, परन्तु तुम्हारे सामने वह प्रेम और केवल प्रेम का भिखारी है। प्रेम चाहता है, प्रेम माँगता है, उसे और किसी दूसरी वस्तु की आवश्यकता नहीं। राजपाट, शासन,

कीर्त्ति, विजय, सब तुम्हारे सामने इसी प्रकार तुच्छ हैं, जिस प्रकार सूर्य के सामने तारे।

छाया—

बस, महाराज! बस। मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, मैं केवल आपका प्रेम चाहती हूँ।

चन्द्रगुप्त—

वह सदैव तुम्हारा है।

छाया—

और सदैव इसी प्रकार मेरा रहेगा?

चन्द्रगुप्त—

सदैव।

छाया—

यह आँखें इसी प्रकार प्रेम में डूबी रहेंगी?

चन्द्रगुप्त—

बराबर।

छाया—

तो संसार में मुझ-सा भाग्यशाली कोई दूसरा नहीं हो सकता।

चन्द्रगुप्त—

हो सकता है, प्यारी छाया! तुमसे बढ़कर भी हो सकता है।

छाया—

वह कौन?

चन्द्रगुप्त—

मैं, मेरी प्यारी छाया! मैं। कुछ घंटों के बाद आज ही रात को तुम मेरी अपनी हो जाओगी, और संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें मुझसे अलग न कर सकेगी।

छाया—

परमात्मा करे, वह समय शीघ्र आये। मेरी आत्मा उसके लिए अधीर हो रही है।

चन्द्रगुप्त—

तुम्हारे पास से उठने को जी नहीं चाहता। परन्तु, क्या करूँ, मेरा राज-काज मुझे बाहर बुला रहा है। अच्छा तो, हृदयेश्वरी! आज्ञा है?

छाया—

जाइए महाराज! जाइए।

चन्द्रगुप्त—

(जाने के लिए उठते हुए) यह महाराज-महाराज सुनते-सुनते तो मैं ऊब गया।

छाया—

तो फिर आप क्या चाहते हैं? (चौकी से उठ खड़ी होती है।)

चन्द्रगुप्त—

मुझे किसी और सुन्दर शब्द से पुकारो।

छाया—

वह कौन-सा सौभाग्यशाली शब्द है, जो मेरे महाराज को पसन्द है?

चन्द्रगुप्त—

वही जिसे भारतीय ललनाएँ अपने पति के लिए प्रयोग करती हैं।

छाया—

अर्थात्?

चन्द्रगुप्त—

इस 'अर्थात्' को मेरी अपेक्षा तुम अधिक जानती हो।

छाया—

बहुत अच्छा, तो वह शब्द आज रात को आप ही के लिए हो जायगा।

चन्द्रगुप्त—

और इस समय नहीं?

छाया—

(सलज्ज भाव से) जी नहीं।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु, क्यों?

छाया—

विवाह हो जाने दीजिए। कुछ ही घंटे तो बाकी हैं।

(प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त—

प्रेम की देवी प्रेम के सिवा और कुछ नहीं चाहती। मुझे अंतःकरण से प्यार करती है। मेरे भाग्य में किसे संदेह हो सकता है?

(प्रस्थान)

(छाया और कुमारी का प्रवेश)

छाया—

चले गये? मेरा ख़याल था, अभी यहीं होंगे।

कुमारी—

तो बुला लाऊँ, या आप उनसे बाहर ही भेंट करेंगी?

छाया—

कौन? तुम किसकी बात कर रही हो? मैंने कुछ नहीं सुना। मैं किसी और विचार में मग्न थी। और तुम जानती हो, वह विचार क्या था।

कुमारी—

(हँसकर) ख़ूब जानती हूँ। आप महाराज के विषय में कुछ सोच रही थीं।

छाया—

तुम बड़ी चतुर हो गई हो!

(छाया फिर किसी गहरे विचार में डूब जाती है। कुमारी उसकी ओर देखती रहती है। एकाएक छाया अपने विचार से चौंकती है।)

छाया—

कुमारी!

कुमारी—

महारानी!

छाया—

मूर्ख! इस शब्द को अभी रहने दे—केवल आज दिन-भर—समझ गई।—हाँ, तुम किसकी बात कर रही थीं? मुझसे कौन मिलना चाहता है?

कुमारी—

वाचाल बाहर खड़े हैं, और थोड़े समय के लिए आज्ञा चाहते हैं।

छाया—

वाचाल ? थोड़े समय के लिए ? आज्ञा ? (सोचती है।) बहुत अच्छा, बुला लाओ। मैं उनसे यहीं मुलाक़ात करूँगी।

कुमारी—

जो इच्छा। (जाती है।)

छाया—

आज उसके आने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? वह मुझसे क्या चाहता है ? अभागा युवक विवाह से अभी तक इन्कार किये जा रहा है।

(वाचाल और कुमारी का प्रवेश)

वाचाल—

मैं क्षमा चाहता हूँ कि—

छाया—

आइए महाराज ! आइए, मैं आपका स्वागत करती हूँ, कहिए, आप कुशल से तो हैं ?

वाचाल—

परमात्मा की दया है।

छाया—

इस समय के शुभागमन का क्या कारण है ?

वाचाल—

देवी ! मैंने और आपने बरसों एक जगह रहकर बिताये हैं। बाल्यावस्था में हम दोनों एक साथ खेले हैं। आपको स्मरण होगा, एक बार मैंने आपसे अपना प्रेम प्रकट किया था, और—

छाया—

और क्या मैंने तब और उसी स्थान पर नहीं कह दिया था, कि मैं यह शब्द तुम्हारे मुख से दूसरी बार नहीं सुनना चाहती।

वाचाल—

और क्या मैंने आपकी इस आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया ?

छाया—

फिर इस समय—

वाचाल—

इस समय के लिए क्षमा कर दीजिए; क्योंकि मैं आपसे सदा के लिए बिदा होनेवाला हूँ। फिर दुबारा इस अभागे का मुख आपके सामने न होगा। जब मैंने आपको देखा, उस समय मुझे यह ख़याल न था कि मेरे प्रेम को इस प्रकार निर्दयता से चूर-चूर कर दिया जायगा।—परन्तु चन्द्रगुप्त सुन्दर है, सम्राट् है। तथापि—

(ठंडी साँस भरता है।)

छाया—

इस कहानी को दोहराने की इस समय क्या आवश्यकता है ?

वाचाल—

मैं इस प्रतीक्षा में था कि मेरा सोया हुआ भाग्य कदाचित् फिर जाग उठे। परन्तु आज अंतिम निश्चय हो गया कि मेरी आशाओं का कोई आधार नहीं, मेरे लम्बे स्वप्नों का कोई स्वप्न-फल नहीं।

छाया—

वाचाल ! मैंने तुमसे बहन का-सा प्रेम किया है, और इस समय तक करती हूँ। परन्तु क्या तुम समझते हो, किसी पुरुष को यह अधिकार प्राप्त है, कि वह किसी स्त्री के विवाह-दिवस को इस प्रकार की दुखःप्रद स्मृति से शोकमय बना दे ?

वाचाल—

परन्तु मैं आपसे बिदा हो रहा हूँ। इसलिए चाहता हूँ कि बिदाई से पहले अपना हृदय उस स्त्री के सामने रख दूँ, जिसे मैं अपने अंतःकरण में प्रेम करता आ रहा हूँ। (ठहरकर) अब मेरा हृदय भारी हो गया है। मुख से बोलने की शक्ति क्षीण हो रही है। अस्तु, आज्ञा दीजिए, अब बिदा होता हूँ। मैं जब तक जीऊँगा, तुम्हें आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति से प्रेम करता रहूँगा। परन्तु

तुम्हारे सम्मुख कभी उसे प्रकट न करूँगा, न कभी सामने आऊँगा। मगर हाँ, यदि तुम कभी सुनो कि वाचाल मर गया, तो शोक न करना कि कभी वह जीता था; और उसकी सारी आशाएँ तुम्हारे साथ लगी हुई थीं।

(वेग से प्रस्थान)

कुमारी—

अभागा नरेश! इसकी दशा पर मुझे बरबस दया आ रही है। कितना वीर है, कितना सदाचारी! आह—

छाया—

बस, जाने दो, मैं सिवा महाराज के और किसी के मुख से प्रेम की बात-चीत सुनना नहीं चाहती। और आज मेरे विवाह का दिन है।--कुमारी! कुमारी!

कुमारी—

महारानी!

छाया—

देखो, महाराज कहाँ हैं?

कुमारी—

क्यों? उनसे अब क्या काम है?

छाया—

मैं उनसे एक बात कहना चाहती हूँ।

(कुमारी जाती है और बाहर इधर-उधर देखकर लौट आती है।)

कुमारी—

महारानी! महाराज तो बाहर चले गये।

दूसरा दृश्य

स्थान—राजमहल का दूसरा कमरा

समय—तीसरा पहर

(चन्द्रगुप्त और वाचाल)

चन्द्रगुप्त—

वाचाल ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? आज के दिन तुम्हारा वियोग ? नहीं भाई ! नहीं, यह मैं कभी नहीं मान सकता, मैं कभी नहीं मानूँगा ।

वाचाल—

महाराज ! इस दिन के लिए मैं बहुत समय से तरस रहा था । मैं झुँझला उठता था कि यह दिन क्यों शीघ्र नहीं आता । महाराज के गले में विवाह की जयमाला देखने के लिए मैं अधीर हो रहा था मैं समझता था, उस दिन आनंद और हर्ष से पागल हो जाऊँगा ।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु ?

वाचाल—

देवताओं की क्या इच्छा यह मैं नहीं जानता था । आज सारे मगध में मुझ-सा हताश, दुखी, शोकातुर दूसरा कोई आदमी न होगा । इसलिए मैं चाहता हूँ कि जितनी जल्दी हो सके, मेरा व्याकुल और शोकमय शरीर इस नगर से दूर चला जाय । मैं इस समय उस उल्लू के समान हूँ, जिसे व्याह-शादियों के अवसर पर अशुभ समझा जाता है । मैं उस कंकर की तरह हूँ, जिसे खीर के थाल में देखना कोई पसन्द नहीं करता ।

चन्द्रगुप्त—

वाचाल ! यह तुम क्या कह रहे हो ? (आगे बढ़कर और उसके कन्धे पर हाथ रखकर) मेरी ओर ध्यान दो । बताओ, तुम्हें क्या दुःख है ? मैं तुम्हें प्रसन्न देखने के लिए अधीर हो रहा हूँ । तुम्हें याद है, तुमने समरभूमि में मेरे लिए विजय प्राप्त की थी—कई अवसरों पर अपने प्राणों को जोखिम में डाल दिया था ?

वाचाल—

(पहलू बदलकर) और यह मेरा कर्त्तव्य था।

चन्द्रगुप्त—

तुमने अपना कर्तव्य पूरा किया, अब मेरी बारी है। मैं अपना कर्तव्य पूरा करने का यह अवसर हाथ से न जाने दूँगा—संसार क्या कहेगा! कहेगा, वाचाल ने अपने कर्तव्य के लिए सब कुछ किया; परन्तु चन्द्रगुप्त ने उसकी बहुमूल्य सेवाओं का कुछ मूल्य न समझा। नहीं, नहीं, मैं यह नहीं होने दूँगा। वाचाल!

वाचाल—

महाराज!

चन्द्रगुप्त—

कहो, बोलो, बताओ, तुम्हें क्या दुःख है? मैं उसे दूर करने के लिए सब कुछ करने को उद्यत हूँ। मेरा सुख तुम्हारे दुःख का बोझ नहीं सँभाल सकता।

वाचाल—

(चुप रहता है।)

चन्द्रगुप्त—

बोलते क्यों नहीं—उत्तर क्यों नहीं देते?

वाचाल—

महाराज! मुझे चुप रहने दीजिए। आपको सुनकर क्लेश होगा।

चन्द्रगुप्त—

इसकी परवा न करो। मैं तुम्हारे दुःख को दूर कर दूँगा। बतलाओ। मैं तुम्हारा सम्राट् हूँ।

वाचाल—

(कुछ आशा-युक्त भाव से) आप उसे दूर कर देंगे?

चन्द्रगुप्त—

यदि यह किसी सम्राट् की शक्ति में है।

(सेवक का प्रवेश)

सेवक—

महाराज की जय हो !

चन्द्रगुप्त—

कौन है ?

सेवक—

राजगुरु चाणक्य महाराज आये हैं ।

चन्द्रगुप्त—

गुरुदेव !

सेवक—

जी महाराज !

(चन्द्रगुप्त और वाचाल दोनों जाते और चाणक्य के साथ लौटते हैं ।)

चन्द्रगुप्त—

महाराज ! पधारिए ।

चाणक्य—

(बैठते हुए) चन्द्रगुप्त !—

चन्द्रगुप्त—

(दूसरी चौकी पर बैठकर) महाराज !—

चाणक्य—

आज तुम्हारा विवाह है ?

चन्द्रगुप्त—

हाँ गुरुदेव ।

चाणक्य—

तुम मेरे शिष्य हो ?

चन्द्रगुप्त—

मुझे इस पर अभिमान है ?

चाणक्य—

तुमने सदैव मेरा कथन स्वीकार किया है ?

चन्द्रगुप्त—

और सदैव करूँगा ।

चाणक्य—

सदैव ?

चंद्रगुप्त—

हाँ गुरुदेव ! सदैव । मेरे कंधे आपके उपकारों से दबे जाते हैं ।

चाणक्य—

यदि कोई बात तुम्हारे विचार के विरुद्ध हो, तब ?

चन्द्रगुप्त—

मैं यही समझूँगा कि मेरी बुद्धि की भूल है ।

चाणक्य—

मुझे तुमसे यही आशा थी । अच्छा, तो सुनो, मैं तुम्हारी परीक्षा करनी चाहता हूँ ।

चन्द्रगुप्त—

(व्याकुल होकर) गुरुदेव !

चाणक्य—

छाया कुमारी से विवाह न करो ?

चन्द्रगुप्त—

(खड़े होकर घबराये हुए) महाराज !

चाणक्य—

यह चाणक्य की आज्ञा है ।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु—

चाणक्य—

तुम्हारी बुद्धि भूल कर सकती है । मैं जो कुछ कहता हूँ, तुम्हारे हित के लिए कहता हूँ । यह विवाह न होगा ।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु, क्यों ?

चाणक्य—

राजगुरु प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

चन्द्रगुप्त—

(सिर झुकाकर) मैं क्षमा चाहता हूँ।

चाणक्य—

(दयादृष्टि से देखकर) चंद्रगुप्त!

चन्द्रगुप्त—

महाराज!

चाणक्य—

तुम सम्राट् हो। तुम्हारे शरीर पर देश और जाति का अधिकार है।

चन्द्रगुप्त—

मैं इसे स्वीकार करता हूँ।

चाणक्य—

छाया एक साधारण राज-कन्या है।

चन्द्रगुप्त—

इसलिए—

चाणक्य—

उससे तुम्हारा विवाह भारतवर्ष को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु मेरा हृदय गुरुदेव—

चाणक्य—

भारतवर्ष तुमसे बलिदान चाहता है। तनिक बाहर निकलो, और सुनो। लोग तुम्हारी निंदा कर रहे हैं। क्या तुम इसे पसंद करोगे?

चन्द्रगुप्त—

(अत्यन्त नम्रता से) यदि केवल निंदा का प्रश्न है, तो मैं छाया और उसके प्रेम के सामने उसकी कुछ परवा नहीं करता।

चाणक्य—

और भारतवर्ष? नहीं, तुम्हें यह विवाह नहीं करना चाहिए।

चन्द्रगुप्त—

मैं छाया के सामने सारे संसार को तुच्छ समझता हूँ।

चाणक्य—

तो क्या यह विवाह नहीं रुकेगा ?

चन्द्रगुप्त—

(दृढ़ विश्वास के साथ) नहीं।

चाणक्य—

नहीं ?

चन्द्रगुप्त—

महाराज ! छाया का जीवन नष्ट हो जायगा। मैंने उससे प्रेम की प्रतिज्ञा की है। वह मुझे संसार-भर में सब से अधिक चाहती है। मैं उससे क्या कहूँगा ? अभी-अभी मैं उसके सामने प्रेम की शपथ खा रहा था। अब जब वह सुनेगी—ओह ! उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। वह सोचेगी, क्या यह भी संभव है, क्या यह भी हो सकता है ? उसको मनुष्यत्व से घृणा हो जायगी। वह पुरुषों के संसार को झूठा समझने लगेगी। वह इस आघात से जीवित न रह सकेगी।

चाणक्य—

तो तुम यह नहीं कर सकते ?

चन्द्रगुप्त—

महाराज ! मुझ में यह शक्ति नहीं।

चाणक्य—

और तुम यह नहीं करोगे !

चन्द्रगुप्त—

मैं नहीं कर सकता।

चाणक्य—

तो मैंने तुम्हें आज तक न समझा था। तुमने अपनी वीरता से जो कुछ प्राप्त किया है, उसे क्या अब एक साधारण लड़की के लिए मिट्टी में मिला दोगे ? तुम्हारा देश तुम से पुकार-पुकार कर कह रहा है कि यह विवाह न

करो; परन्तु तुम प्रेम में अंधे होकर उसकी कोई परवा नहीं करते। परिणाम यह होगा कि यह राज्य मिट्टी में मिल जायगा। चन्द्रगुप्त! तुम्हें सोचना और बतला देना चाहिए कि तुम देश के लिए अपना प्रेम भी निछावर कर सकते हो। देश तुम पर अभिमान करेगा, भावी संतान तुम्हारा नाम लेकर सिर झुकाएगी। बोलो, तुम्हें स्वीकार है?

चन्द्रगुप्त—

मैं क्या कर सकता हूँ। महाराज! यह परीक्षा बड़ी कठिन है।

चाणक्य—

चन्द्रगुप्त, वत्स! अपने देश की ओर देखो।

चन्द्रगुप्त—

इससे उसे क्या लाभ होगा?

चाणक्य—

यह मैं जानता हूँ।

चन्द्रगुप्त—

(ठंढी साँस भरकर) बहुत अच्छा, परन्तु—

चाणक्य—

अब तुम चन्द्रगुप्त के योग्य बातें कर रहे हो। उठो, मेरे साथ आओ; और तुम वाचाल—

वाचाल—

(सिर झुकाकर) महाराज!

चाणक्य—

छाया के पास जाकर उससे कह दो कि यह विवाह नहीं हो सकता। किसी तरह नहीं हो सकता। यह चन्द्रगुप्त का निश्चय है।

वाचाल—

बहुत अच्छा।

चाणक्य—

आओ बेटा! इसकी घोषणा की जाय, जिससे लोगों को मालूम हो कि तुम कितने वीर, धीर और महान हो।

(दोनों का प्रस्थान)

वाचाल—

आशा ! क्या तू फिर मुझे धोखा दे रही है ? या सचमुच मेरे अंधकारमय जीवन में प्रकाश की किरण चमकने को है ? परन्तु नहीं, तेरा कोई विश्वास नहीं। तूने मुझे पग-पग पर धोखा दिया है। मगर क्या अब—कौन, वही आ रही है। परमात्मन् ! मैं क्या करूँ, उससे कैसे कह सकूँगा ? उसका हृदय इसे कैसे सहन कर सकेगा। हाय ! मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है।

(वाचाल कुर्सी को थामकर आँखों पर हाथ रख लेता है। छाया और कुमारी आती हैं। छाया वाचाल के निकट जाती है और एकाएक चौंक पड़ती है।)

छाया—

कौन, वाचाल ! तुम अभी तक नहीं गये ?

वाचाल—

यदि मैं अब तक नहीं गया, तो यह मेरा नहीं, महाराज का दोष है।

छाया—

महाराज का दोष ?

वाचाल—

मुझे उन्होंने नहीं जाने दिया। मेरे पास उनका एक आवश्यक संदेसा है।

छाया—

किसके लिए ? क्या मेरे लिए ?

वाचाल—

हाँ राजकुमारी।

छाया—

क्या ?

वाचाल—

छाया ! क्या ही अच्छा होता; यदि यह काम मुझे न सौंपा जाता। महाराज के पास सैकड़ों दास हैं। क्या वह उनमें से किसी दूसरे को न तैनात कर सकते थे ?

वाचाल—

बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो ? मैं अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं कर सकती।

वाचाल—

क्रोध न करो। यदि मेरी जगह पर कोई दूसरा होता, तो निस्संदेह आनन्द से पागल हो जाता, और एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना पसन्द न करता। परन्तु मैं—ओह ! मुझे तुमसे अभी तक प्रेम है, और मैं तुम्हारे तनिक-से दुःख के सामने अपने जीवन की बड़ी-से-बड़ी प्रसन्नता को तुच्छ समझता हूँ। इसीलिए मैं तुम से वह बात नहीं कह सकता, और न कह सकूँगा। राजकुमारी ! मैं जाता हूँ।

(जाना चाहता है)

छाया—

ठहरो वाचाल ! ठहरो। अभी-अभी तुमने कहा है कि तुम मुझे दुःख देना नहीं चाहते, और मेरे तनिक से कष्ट पर अपने जीवन का बड़े से बड़ा सुख निछावर कर सकते हो। तो फिर मेरी ओर देखो। मेरी आँखों के आँसू देखो, और उस कष्ट का विचार करो, जो मेरे हृदय को अंधकारमय बना रहा है। यदि तुमको मुझसे कभी प्रेम था—(कुछ ठहरकर) कहो, महाराज ने क्या कहा है ?

वाचाल—

राजकुमारी !—

छाया—

परमात्मा के लिए कहो।

वाचाल—

नहीं राजकुमारी ! मुझे क्षमा किया जाय।

छाया—

तो मेरी इच्छा कोई वस्तु नहीं ?

वाचाल—

तुम मुझसे घृणा करने लगोगी।

छाया—

बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो—भारतवर्ष का एक पुरुष किसी स्त्री का इतना अपमान नहीं कर सकता।

वाचाल—

तो राजकुमारी ! तैयार हो जाओ। परमात्मा तुम्हें लोहे का कलेजा और पत्थर का हृदय दे। महाराज ने आज्ञा दी है—

छाया—

(घबराहट से) क्या आज्ञा ?

वाचाल—

तुमसे कह दूँ कि उनका और तुम्हारा विवाह अब नहीं हो सकता।

छाया—

(अत्यन्त व्याकुलता से) क्या—विवाह ?— मेरा और उनका ?—नहीं हो सकता ?—यह तुम कहते हो ?

वाचाल—

राजकुमारी ! मैं नहीं, महाराज कहते हैं। यह महाराज ने कहा है। उनके साथ अन्याय न करो। वह रो रहे थे। उनके नेत्रों में आँसू और मुख पर सफेदी थी। हाथ-पैर काँप रहे थे। वह तुमसे प्रेम करते हैं। परंतु यह राज्य, यह सिंहासन—ओह ! राज्य कितना महँगा है। इसे सुरक्षित रखने के लिए वह तुमसे वियुक्त होने को बाध्य किये गये हैं।

छाया—

हाय ! कुमारी, तुम सुन रही हो, वह बाध्य किये गये हैं।

कुमारी—

एकाएक यह हो जायगा, इसका ख़याल भी न था।

छाया—

(रोते हुए) महाराज सदैव मेरे सम्मुख प्यार की नई-नई क़समें खाते थे। वह मुझे इस तरह छोड़ देंगे ; इसका मुझे स्वप्न में भी ख़याल न था। मुझे अब भी विश्वास नहीं होता। (रोना बन्द करके) वह मुझे नहीं छोड़ सकते, मुझे नहीं छोड़ेंगे। यह जाल, यह कपट केवल मुझे नाश करने के लिये है।

यह महाराज का संदेसा नहीं, टूटे हुए हृदय का अंतिम वार है—ठुकराए हुए प्रेम का प्रतीकार है। (वाचाल की ओर देखकर) वाचाल !

कुमारी—

एक शब्द—

छाया—

(अपने कथन को जारी रखते हुए) तुमने जो कुछ कहा, उसके एक शब्द पर भी मुझे विश्वास नहीं है। तुम झूठ बोलते हो और इस घृणित उपाय से उस स्त्री का प्रेम प्राप्त करना चाहते हो, जो तुमसे प्रेम नहीं करती। महाराज ने तुम पर विश्वास किया—महाराज तुमपर विश्वास करते हैं, और उन्होंने तुम्हें अपने महल के अंदर आने-जाने की अनुमति दे रक्खी है। क्या यह उसी दया का बदला है ? तुम समझते हो, वह मुझसे फिर जायेंगे, तो मैं तुम्हारे पैरों की ओर दौड़ी आऊँगी। परंतु—

वाचाल—

राजकुमारी !

छाया—

तुमने स्त्री के हृदय को अब तक नहीं समझा। वह एक ही बार प्रेम करती है, एक ही पुरुष से प्रेम करती है। और जब उसमें विफल होती है, तो संसार भर के सुखों पर लात मार देती है। उसे धोखा देना सहज नहीं।

वाचाल—

राजकुमारी !

छाया—

तुम्हारी कुचेष्टा असफल रही। मुझे तुम्हारी बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं है।—कुमारी ! आओ चलें, मैं महाराज से अभी मिलूँगी। पता लगाओ, वह किस कमरे में हैं ?

(छाया और कुमारी दोनों चली जाती हैं। वाचाल आश्चर्य से खड़ा रह जाता है, मानो वह मनुष्य नहीं, मिट्टी की मूर्ति है। सहसा वेग से जाना चाहता है ! फिर रुक जाता है और अपने आपसे यों बातें करने लगता है।)

वाचाल—

यह ठुकराये हुए प्रेम का बदला है !—उसने यह शब्द क्यों कहे ? क्या उसने मुझे इतना नीच, इतना कमीना समझ लिया—परंतु नहीं, यह उसका नहीं, उसके प्रेम का दोष है। उसे महाराज से प्रेम है, और प्रेम की आँखें नहीं होतीं। वह सर्वथा निर्दोष है।

(प्रस्थान)

❀ ❀ ❀ ❀

तीसरा दृश्य

स्थान—छाया का कमरा

समय—सन्ध्या

(छाया उदास बैठी है। कुछ देर तक वह उसी अवस्था में बैठी रहती है। एकाएक उठती है और दरवाज़े की ओर जाती है। फिर लौटती है, फिर देखती है, और फिर पागलों की तरह अपने आप बातें करने लगती है।)

छाया—

कुमारी अभी तक नहीं आई। ओह ! समय की गति कैसी धीमी हो गई है ! मेरा दम घुटा जा रहा है ! ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि का विनाश हो रहा है—इस विलम्ब का कारण क्या हो सकता है ? (सोचती है) यही कि कुमारी असफल वापस आएगी। महाराज उससे नहीं मिलना चाहते। तो क्या वाचाल झूठ नहीं कह रहा था ? परमात्मा ! मेरा हृदय इसको नहीं सह सकता—नहीं सह सकेगा ! (दौड़कर दरीचे की ओर जाती है) क्या ? सब तैयारियाँ रोक दी गईं, सड़कों की सजावट बन्द कर दी गई, और सिपाहियों के पहरे हटा लिये गये। तो यह झूठ नहीं था ?

(कुमारी का प्रवेश)

छाया—

कहो, बोलो कुमारी ! तुम महाराज से मिलीं ? वह क्या कर रहे थे ? उन्होंने क्या उत्तर दिया ? वह कब आएँगे ?

कुमारी—

वह इस समय चाणक्य महाराज के पास थे ?

छाया—

क्या कर रहे थे ?

कुमारी—

उनकी आँखों में आँसू थे ।

छाया—

और—

कुमारी—

महाराज चाणक्य उनकी कोई बात नहीं मानते ।

छाया—

(खड़े होकर) तो यह सच है ?

कुमारी—

हाँ, सच है । परन्तु महाराज इससे पागल—

छाया—

नहीं कुमारी ! नहीं, यह भी धोखा होगा । पुरुष धोखा देने में बहुत चतुर होते हैं । इस मनुष्य ने—महाराज ने मुझे ऐसा धोखा दिया कि मुझे उस पर संदेह तक नहीं हुआ । आज प्रभात तक तैयारियाँ हो रही थीं । परन्तु वह इस प्रभात के साथ उस शाम को भी देख रहा था, जो उसके साथ चिमटी हुई थी । मुझे ख़याल भी न था कि मेरे विनाश के बाँधनू बँध रहे होंगे । कुमारी !—

कुमारी—

धीरज धरिए । निस्संदेह आपके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा है ।

छाया—

इधर आओ—

(कुमारी छाया के निकट जाती है ।)

छाया—

यह वस्त्र, यह आभूषण मुझे तुमने पहनाये थे ?

कुमारी—

(रुद्ध कंठ से) मुझे क्या मालूम था कि—

छाया—

अब तुम्हीं इन्हें मेरे शरीर से अलग कर दो। (कुमारी चुप रहती है।) तुम नहीं सुनतीं, नहीं मानती ? अच्छा, लो, इन्हें मैं स्वयं उतारे देती हूँ। (आभूषण और ब्याह के वस्त्र उतारकर पृथ्वी पर फेंक देती है।)

कुमारी—

यह आपने क्या किया ?

छाया—

महाराज आएँगे ?

कुमारी—

हाँ। लो, वह आ रहे हैं।

छाया—

तो कह दो, मैं उनसे मिलना नहीं चाहती।

कुमारी—

आप भूल कर रही हैं। महाराज—

छाया—

मिलने की कोई आवश्यकता नहीं।

(वेग से प्रस्थान)

(कुमारी जल्दी से छाया के वस्त्र और आभूषण उठाकर छिपा देती है। महाराज अन्दर आते हैं।)

चंद्रगुप्त—

कुमारी !

कुमारी—

(सिर झुकाकर) महाराज !

चंद्रगुप्त—

छाया कहाँ है ? जाकर कहो, मैं मिलना चाहता हूँ।

(कुमारी सिर झुकाकर जाती है। महाराज बैठ जाते हैं।)

चंद्रगुप्त—

(स्वगत) चंद्रगुप्त ! अन्त में वह समय आ गया; अब तुम क्या करोगे ? वह शब्द सोच लो, जिनसे तुमको इस तपस्विनी बालिका को आशाओं की हत्या करनी है। यह वीरता नहीं, अत्याचार होगा। वह सुनकर क्या कहेगी। हाय ! उसे यह कल्पना तक न थी। प्रातःकाल वह कैसी प्रसन्न थी। मैंने उसे विश्वास दिलाया था। परन्तु अब, अभागे चंद्रगुप्त ! रोती हुई सुंदरता का अंतिम दृश्य देख, और वास्तविक सुख से सदा के लिए वंचित हो जा।

गुरुदेव ! यह परीक्षा बहुत कठिन है। क्या मैं सफल हो सकूँगा ? (उठकर टहलते हैं। सहसा उनकी दृष्टि वस्त्रों और आभूषणों पर पड़ती है। वह ठिठक जाते हैं, उन्हें बाहर निकालते और चौकी पर रख देते हैं।) अभागी लड़की ! पता नहीं, तू अपने मन में क्या कहती होगी ? परन्तु यह मेरा दोष नहीं है।

(छाया और कुमारी खैंचातानी करतीं अंदर आती हैं।)

छाया—

बस, तुम मुझे नहीं रोक सकतीं। मैं चाणक्य को कुछ नहीं समझती। मैं महाराज से भेंट करूँगी। (महाराज से) आप आ गये। बताइये, क्या यह सच है ?

चंद्रगुप्त—

देवी ! मुझ पर दया करो, मेरी दशा पर तरस खाओ। मुझ-सा अभागा मनुष्य आज सारे भारतवर्ष में न होगा।

छाया—

महाराज ! मैं उत्तर चाहती हूँ। क्या यह सच है ?

चंद्रगुप्त—

इस समय मैं प्रेम की बात करने नहीं आया। कर्तव्य ने मेरे होंठों के लिये शुष्क शब्द चुने हैं— नहीं—क्या ? तुम मेरी ओर ऐसी दृष्टि से न देखो। तुमने मुझे कई बार कर्तव्य का मार्ग दिखाया है। इस समय भी वीर-आत्मा बनो। यहाँ हृदय को कोमल नहीं, पत्थर बनाने की आवश्यकता है। यदि तुमने मेरी ओर इसी प्रकार देखा, तो मैं इसे सहन न कर सकूँगा। ओह ! कर्तव्य-पथ किस प्रकार काँटों से भरा पड़ा है।

छाया—

(सिसकी भरकर) महाराज !

चंद्रगुप्त—

देवी !

छाया—

आप—

चंद्रगुप्त—

देश, देवी ! देश ।

छाया—

(आँसू रोककर) देश ? देश क्या कहता है ?

चन्द्रगुप्त—

यह विवाह अनुचित है ।

छाया—

क्यों ?

चन्द्रगुप्त—

देश को शक्ति की आवश्यकता है ।

छाया—

अर्थात्—

चन्द्रगुप्त—

तुम एक साधारण पहाड़ी राजा की कन्या हो ।

छाया—

तो—

चन्द्रगुप्त—

इस विवाह से मेरे राज्य की शक्ति ज़रा नहीं बढ़ेगी ।

छाया—

(उदासीन भाव से) तो शक्ति बढ़ाने का उपाय क्या सोचा गया है ?

चन्द्रगुप्त—

यह महाराज चाणक्य का प्रस्ताव है, मेरा नहीं ।

छाया—

परन्तु वह प्रस्ताव क्या है ?

चन्द्रगुप्त—

सैल्यूकस की बेटी—

छाया—

सच है। वह सुन्दरी है। उसका रंग गोरा है। वह बड़े पिता की पुत्री है। उसके पास सेना है, ख़ज़ाना है, शक्ति है। और मैं (रोकर) एक साधारण राजा की कन्या हूँ। परन्तु महाराज, आप इस दुःखिनी की बात याद रक्खें। जितना प्रेम आपके लिये इस हृदय में है, उतना संसार-भर के किसी दूसरे हृदय में न होगा।

चन्द्रगुप्त—

यह सब कुछ मैं भली भाँति समझता हूँ, और जानता हूँ कि तुम्हें छोड़कर मैं जीवन-भर के लिये वास्तविक सुख से वंचित हो जाऊँगा। तुम्हारी ठंडी साँसें मेरे जीवन के एक-एक क्षण को दुःखमय कर देंगी। तुम्हारा प्रेम जो मेरे रोम-रोम के अन्दर समाया हुआ है, मुझे प्रतिक्षण अशान्त बनाये रक्खेगा, और मैं मरणपर्यन्त यही समझूँगा कि मैंने तुम पर और अपने ऊपर अत्याचार किया है। परन्तु फिर भी देश यही चाहता है छाया! (विवशता के भाव से) मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं सम्राट् हूँ।

छाया—

(मस्तक ऊँचा करके) क्या आप उस समय सोये हुए थे, जब मेरे आगे नित नई सौगन्धों के साथ नवीन शब्दों में प्रेम प्रकट किया करते थे ? क्या आप उस समय मुझसे नहीं कह सकते थे कि अभागी राजकुमारी! मैं सम्राट् हूँ, और तू साधारण राजकन्या; मेरा-तेरा विवाह न हो सकेगा। परन्तु तुमने ऐसा न करके मेरा प्रेम से भरा हुआ भोला-भाला हृदय छीन लिया और उसे आज इस राज्य-सत्ता के पत्थर पर पटककर खंड-खंड कर रहे हो! क्या तुम्हारी यही प्रतिज्ञा थी ? बोलो, उस समय यह देश कहाँ सोया पड़ा था ?

चन्द्रगुप्त—

छाया! मैं क्या करूँ, देश का मुझ पर अधिकार है।

छाया—

और तुम्हारा अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं? क्या राजों के अपने अधिकार, अपने स्वत्व नहीं होते?

चन्द्रगुप्त—

मैं कुछ नहीं कर सकता।

छाया—

महाराज! यह आप क्या कर रहे हैं? ज़रा विचार कीजिये, मैं आपकी छाया हूँ। (रोने लगती है।)

चन्द्रगुप्त—

अभागे चन्द्रगुप्त! तूने क्यों अतीत समय में भविष्य की अवस्था को न देखा, और राज्य के उत्तरदायित्व पर विचार न किया? तू समझता था कि तू भी दूसरे मनुष्यों की तरह स्वतंत्र है, जो चाहे, वह कर सकता है। पर नहीं, तू सम्राट् है, तेरी स्वतन्त्रता तेरे देश की धरोहर है। तेरी इच्छा तेरे देश का सर्वस्व है। तूने असंभव को संभव समझा, और आज उसका यह परिणाम है कि तेरे आँसू तेरे गालों पर बह रहे हैं। तेरा सुख, तेरा संसार, तेरी सबसे बड़ी मनोकामना नष्ट हो रही है। तू सामने खड़ा देख रहा है, और कुछ नहीं कर सकता। (सहसा छाया की ओर देखकर) परन्तु छाया, मुझे शासन करना है।

छाया—

तो आपका यही निश्चय है?

चन्द्रगुप्त—

हाँ यही।

छाया—

तो राज्य करो, और अपना बल बढ़ाने के विचार में प्रसन्न रहो। मैं तुम्हें दुखी न करूँगी। मैं केवल यही देखना चाहती थी कि तुम्हारे वह होंठ, जिन्होंने मुझसे सहस्रों बार प्रेम की प्रतिज्ञाएँ की हैं, किस प्रकार और किन शब्दों में मुझसे यह कहते हैं कि अब मेरा-तुम्हारा कोई सम्बन्ध, कोई नाता नहीं। अब मैं फिर न आऊँगी, फिर तुमसे कोई बात-चीत न करूँगी। लो बिदा! यह

शब्द मेरे होंठों से बाहर नहीं निकला। परन्तु क्या करूँ, तुम्हारी राज्य-सत्ता मुझसे यही चाहती है, तो मैं क्या कर सकती हूँ। सूर्य निकलेगा, और अस्त हो जायगा। दिन चढ़ेगा, और ढल जायगा। दिन, मास और वर्ष बीत जायँगे, पर यह सूरत न दिखाई देगी, यह स्वर न सुनाई देगा। परन्तु अच्छा, देखा जायगा। तो अब महाराज की जय हो, जाती हूँ।

(शिवा का तेज़ी से अन्दर आना)

शिवा—

ठहर पुत्री! ठहर। (चन्द्रगुप्त से) चन्द्रगुप्त!

चन्द्रगुप्त—

माताजी!

शिवा—

यह क्या हो रहा है?

चन्द्रगुप्त—

गुरुजी की यही आज्ञा है।

शिवा—

इस प्रेम की पुतली को छोड़ रहे हो? बेटा! ऐसी लड़की संसार-भर में दिया लेकर ढूँढ़ते फिरोगे, तो भी नहीं मिलेगी।

चन्द्रगुप्त—

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं माताजी!

शिवा—

तो फिर यह विवाह क्यों रोक दिया गया है?

चन्द्रगुप्त—

गुरुजी की आज्ञा है।

शिवा—

परन्तु मैं तुम्हारी माता हूँ। मेरी आज्ञा है, इससे ब्याह करो। मैं इस प्रेम और सौन्दर्य की मूर्ति, सुशीला, सती-साध्वी देवी के नेत्रों में आँसू नहीं देख सकती। वह तुम्हारे राज्य की जड़ों को हिला देंगे! मैं इसकी ठंडी साँसों को नहीं सह सकती। वह तुम्हारी शक्ति पर बादल बनकर छा जायँगी!

छाया—

नहीं माता ! नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं होगा । मैं कहीं हूँ, किसी दशा में हूँ, परन्तु मेरा हृदय इनके लिये कोई शाप नहीं दे सकता । मेरे होंठ इनके लिये सदैव परमात्मा से मंगल-कामना करते रहेंगे । मैं भारतीय नारी हूँ । मैं प्रेम कर चुकी हूँ ।

शिवा—

वत्स ! इसके भाव समझो । इसके विचार देखो ।

चन्द्रगुप्त—

परन्तु देश मुझसे बलिदान चाहता है ।

शिवा—

तो देश का बलिदान करो । इस तपस्विनी कन्या के बलिदान का तुम्हें क्या अधिकार है ?

चन्द्रगुप्त—

माता !

शिवा—

मैं आज्ञा देती हूँ, यह ब्याह करो । तुमने सदैव मेरी आज्ञा का पालन किया है ।

चन्द्रगुप्त—

और मैं अब भी तैयार हूँ ।

शिवा—

तैयार हो ?

चन्द्रगुप्त—

हाँ तैयार हूँ । परन्तु इतना सोच लो कि यह राज्य का पौदा, जिसे इतने दिनों सींच-सींचकर हमने वृक्ष बनाया है, बहुत जल्द जड़ से उखड़ जायगा ।

शिवा—

परन्तु क्यों ?

चन्द्रगुप्त—

यह गुरुजी की भविष्यवाणी है ।

शिवा—

और वह सैल्यूकस की बेटी, पराये देश की लड़की, आकर इस उखड़ते हुए वृक्ष को अपने हाथों से थाम लेगी? ओह! कितनी भारी भूल है! इसी विचार पर इस लड़की की इच्छाओं को मसल रहे हो!

चन्द्रगुप्त—

मगर मैं कुछ नहीं कर सकता।

शिवा—

कुछ नहीं कर सकते? मेरा कहा भी नहीं मान सकते? तुम्हारा यह साहस? मुझे यह स्वप्न में भी ख़याल न था कि तुम मेरे वचन का इतना अनादर कर सकते हो। भोले बालक! तुम क्या कह रहे हो?

चन्द्रगुप्त—

माता मैंने निश्चय कर लिया है कि देश की भलाई पर अपने निज के सुखों को निछावर कर दूँगा। गुरुदेव का विचार पत्थर की लकीर है। मैं मरने को तैयार हूँ, परन्तु देश-हित के मार्ग में बाधा नहीं दे सकता। हा! यदि मुझे इससे प्रेम न होता, यदि मेरे स्वप्न इसकी याद में लवलीन न हो चुके होते! मैं क्या कह सकता हूँ, आप मेरी माता हैं। मैं अपनी सबसे प्यारी वस्तु देश पर निछावर कर रहा हूँ। इसे छोड़ना मेरा सब से बड़ा बलिदान है। (छाया की ओर उँगली उठाकर) यह मेरे जीवन का सर्वस्व है। परन्तु मैं क्या करूँ, गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने से देश मुझे धिक्कार देगा, मेरा सिर नीचे झुक जायगा।

छाया—

नहीं महाराज! नहीं। आप सिर ऊँचा करके छाती फुलाकर खड़े हों। देश आपकी प्रशंसा के गीत गाए। शक्ति आपके सामने हाथ बाँधे। ऐश्वर्य आपके सिर पर चँवर हिलाये। आप इन बातों की ओर देखें, इनकी परवा करें। परन्तु मेरा—(लम्बी साँस भरकर) मेरा ख़याल न करें। मैं बिदा होती हूँ। मैं आपके मार्ग का कंटक नहीं बनना चाहती। परन्तु आपका प्रेम मेरे हृदय से नहीं निकलेगा। उसे मेरे हृदय में स्मारक के रूप में रहने दें। आपने मुझसे मेरा सुख, धीरज, शान्ति, सब कुछ छीन लिया है; परन्तु यह प्रेम,

यह अंतिम सुख-स्मृति संसार में मैं अपने हृदय से पृथक् नहीं कर सकूँगी। जब तक जीती हूँ—पता नहीं कब तक; एक दिन, एक सप्ताह या एक मास—उस समय तक यह धरोहर मेरे पास रहने दें—क्यों आप रो रहे हैं? धीरज धरें। आपने मुझसे साहस माँगा था, मैं आपको साहस दे रही हूँ। आपके इन आँसुओं ने आपका हृदय मेरे आगे खोल दिया है। अब मैं सब कुछ सहन करूँगी। आप मुझसे प्रेम करते हैं, बस, मेरे लिए यही सब कुछ है। कुमारी! माताजी! महाराज! मैं जा रही हूँ! महाराज की जय हो।

(वेग से प्रस्थान)

शिवा—

वह चली गई। यह नहीं हो सकता। चन्द्रगुप्त! चन्द्रगुप्त वत्स!!

चन्द्रगुप्त—

(रोते हुए) माता!

शिवा—

देखते हो, छाया चली गई। बोलो मैं उसे बुला लूँ।

चंद्रगुप्त—

क्या?

शिवा—

समय हाथ से जा रहा है। शीघ्र बोलो, मैं उसे बुला लूँ।

चंद्रगुप्त—

भाग्य से कोई नहीं लड़ सकता, इसका मुझे ज्ञान न था।

शिवा—

तो तुम क्या कहते हो? जल्दी करो, एक-एक क्षण में बात बिगड़ रही है। मुझे भय है कि छाया कहीं—

चंद्रगुप्त—

अपने प्राणों पर खेल जायगी? नहीं यह नहीं हो सकता। जाओ, उसे वापस बुला लाओ। मैं अपना निश्चय बदलता हूँ।

शिवा—

पुत्र! तुमने मुझे दुबारा जीवित किया, तुम्हें दूध पिलाना व्यर्थ नहीं गया।

(वेग से प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त—

एक ही दिन में इतनी घटनाएँ हो जायँगी, यह कौन जानता था। इनके सामने मनुष्य की उतनी भी स्थिति नहीं, जितनी नदी के वेग-युक्त प्रवाह के सामने एक तृण की होती है। प्यारी छाया! मैं राज-पाट छोड़ दूँगा और भिखारी बनकर तुम्हारे साथ सुखी रहूँगा। मुझे इस राज्य की कोई आवश्यकता नहीं। मेरा राज्य—मेरी सत्ता तू है।

(वाचाल का प्रवेश)

वाचाल—

महाराज की जय हो।

चन्द्रगुप्त—

तो अब तुम नहीं जाओगे?

वाचाल—

मैं अन्तिम बार दर्शनों के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

चन्द्रगुप्त—

नहीं भाई वाचाल! नहीं, मैं यह नहीं सह सकूँगा। मुझे इस संसार में केवल दो वस्तुओं से प्रेम है, तुमसे और छाया से। आज तुम दोनों मुझसे अलग हो रहे थे। छाया को मैं छोड़ रहा था, तुम मुझे छोड़ रहे थे। परन्तु अब यह कभी न हो सकेगा। तुम में एक मेरे दिन की धूप है, दूसरा रात की चाँदनी। मैं इन दोनों के बिना नहीं रह सकूँगा। मैंने छाया को छोड़ने का विचार छोड़ दिया है, तुम मुझे छोड़ने का विचार छोड़ दो।

वाचाल—

हाय! प्रारब्ध ने मुझे फिर धोखा दिया। आशा की छोटी सी किरण दिखाई दी थी, वह फिर अथाह अन्धकार में विलीन हो गई।

चन्द्रगुप्त—

यह तुम क्या कह रहे हो?

वाचाल—

महाराज!

चन्द्रगुप्त—

कहो भाई वाचाल ! कहो, तुम क्या कहना चाहते हो ?

वाचाल—

जो आप सुनने को तैयार न होंगे।

चन्द्रगुप्त—

आज मैं सब कुछ सुन लूँगा। आज का दिन ऐसी ही घटनाओं के लिए जिनकी कोई आशा न थी। तुम कहो, क्या कहना चाहते हो, जिसकी मेका इतनी भयानक है।

वाचाल—

महाराज ! मुझे छाया से प्रेम था।

चन्द्रगुप्त—

(चौंककर) प्रेम था, और अब ?

वाचाल—

अब भी उसी प्रकार है। आपने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। मैं इस शा में आपके पास नहीं रह सकता।

चन्द्रगुप्त—

वाचाल ! तुम्हारा यह साहस ! तुमको मेरी सत्ता का, मेरी तलवार का, रे राज्य का भय न था ! जो यह शब्द इस प्रकार सहज ही में मेरे सामने ह दिये ? यह मेरा, मेरे प्रताप का, मेरी शक्ति का अपमान है।

वाचाल—

(उपेक्षा से) यदि यह अपमान है, तो मैं इसका दोषी हूँ।

चन्द्रगुप्त—

(क्रोध से) दुष्ट ! निर्लज्ज !

वाचाल—

(तलवार पर हाथ रखकर) बस, सावधान ! मैं यह अपमान के शब्द सुन सकता।

चन्द्रगुप्त—

तलवार निकालो। हम लड़ेंगे।

वाचाल—

महाराज ! आप मेरे सम्राट् हैं। मैं आपके सामने तलवार नहीं निकाल सकता।

चन्द्रगुप्त—

कायर ! ढीठ !

वाचाल—

(तलवार निकाल कर) बहुत अच्छा, यह अग्नि आपके पत्थर पर पत्थर मारने से निकली है। मैं इसका उत्तरदाता नहीं हो सकता। आ जाइये, मैं तैयार हूं।

(दोनों लड़ना चाहते हैं। बाहर से रोने का शब्द सुनाई देता है।)

चन्द्रगुप्त—

कौन ! यह माताजी की आवाज़ है। इसका क्या मतलब ! कहीं ओह !

(एकाएक चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—

बस, बफरे हुए उन्मत्त शेरो ! तलवारें झुका लो। छाया मर रही है।

चन्द्रगुप्त—

(तलवार फेंककर) क्या छाया;—इसके आगे आपने क्या कहा ?

चाणक्य—

बेचारी लड़की प्रेम की ठोकर को न सह सकी, और उसके बिना एक क्षण भी जीवित न रही। उसने विष खा लिया।

वाचाल—

(चन्द्रगुप्त से) और इसका उत्तरदायित्व आप पर है महाराज !

चन्द्रगुप्त—

नहीं इसमें मेरा कोई दोष नहीं। यह सब गुरुदेव—इस ब्राह्मण की करतूत है। छाया ! छाया !!

(तेज़ी से जाना चाहते हैं। छाया गिरती-पड़ती अन्दर आती है। रानी सहारा दिये हुए हैं।)

छाया—

महाराज की जय हो ! प्रणाम करती हूं।

चन्द्रगुप्त—

प्यारी छाया ! यह तुमने क्या कर डाला ! क्या तुम्हें मेरा खयाल न था ? ओह ! मैंने राज-पाट, सिंहासन, सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया था । परन्तु अब—

छाया—

आपने अपना कर्तव्य पूरा किया । मैंने अपना कर्तव्य समझा ।

चन्द्रगुप्त—

वाचाल ! दौड़ो राजवैद्य को जल्दी बुलाओ । यह बचेगी, मैं इसे नहीं मरने दूँगा ।

छाया—

(तड़पते हुए) नहीं, अब वैद्य कुछ नहीं कर सकेगा । मैं जली, मैं फुँकी महाराज !

चन्द्रगुप्त—

(झुककर) छाया ! छाया !!

शिवा—

किसे बुला रहे हो ? वह अब इस संसार में नहीं रही । यह केवल पिंजरा है, पंछी उड़ गया ।

चन्द्रगुप्त—

क्या ? मर गई; एक तारा आकाश से टूट पड़ा, एक संगीत-लहरी वायु-मंडल में विलीन हो गई, एक फूल मिट्टी में मिल गया, एक बुद्बुदा जल में तन्मय हो गया, और इसका उत्तरदाता मैं हूं ! इसको मारने वाला, इस सौन्दर्य की हत्या करने वाला, इस लावण्य को नष्ट करने वाला मैं हूं । छाया ! छाया !! मेरी प्यारी !!!

(बेहोश होकर गिर जाते हैं ।)

(परदा गिरता है ।)

मुद्रक—बी० के० शास्त्री, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, काशी ।